Chapter-2

द्वितीय अध्याय

भारतीय संगीतकारों का व्हायोलिन तथा अन्य विदेशी वाद्यों के प्रति दृष्टिकोण।

कोई भी व्यक्ति अपना स्वभाव, अपना रहन-सहन, अपनी आदते, अपनी पारिवारिक, सामाजिक परम्परा आदि को एकाएकी बदलता नहीं। कर्मठ, सनातनी वृत्ति के लोग तो अधिक पक्क होते है। किसी नए विचार, नए वातावरण, नए साधन सामग्री के बारे में वे सोचते भी नहीं। अपनी पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परम्परा में किसी भी प्रकार का बदलाव उन्हें स्वीकार्य नहीं होता। संगीत और संगीतकारों में भी यह वृत्ति दिखाई देती है।

अपना घराना, अपना सम्प्रदाय, अपनी शैली, अपनी परम्परा को सर्वाधिक महत्त्व दिया जा रहा है और आज भी कम-अधिक मात्रा में इस प्रकार के संगीतकार दिखाई देते है। भारतीय संगीत की दो प्रमुख धाराएँ हिन्दुस्तानी व कर्नाटकी, इनमें भी आपस में कोई मेल-जोल नहीं था। अतः व्हायोलिन व अन्य विदेशी वाद्यों के प्रति उनका दृष्टिकोण संकुचित होना स्वाभाविक था। इस संकुचित वातावरण को दूर करने का श्रेय उन्हीं को जाता है, जिन्होंने "कोई भी कला परिवर्तनशील होती है" इस कला के स्वभाव को पूरक अपने खुले विचार, अपनी कोशिश व परिश्रमों से संगीत में नए प्रयोग करके उन्हें प्रसारित व लोकप्रिय बनाया। आखिर भारतीय संगीत के विभिन्न घरानों का मूल-आधार भी तो परिवर्तनशीलता ही था। मूल घराना ग्वालियर से ही आग्रा, किराना, पटियाला, जयपुर, अत्रौली, लखनऊ, बनारस आदि घरानों का निर्माण हुआ।

वाद्य-संगीत के क्षेत्र में भी गज़ से बजाये जानेवाले भारतीय परम्परा के वाद्य सारंगी, इसराज, दिलरूबा, तारशहनाई आदि में व्हायोलिन की स्थापना होने में कुछ कालखण्ड व्यतीत होना स्वाभाविक था। पाश्चात्य विभिन्न प्रकार के वाद्यों में व्हायोलिन यह एक ही वाद्य है जो भारतीय संगीत के साथ घनिष्ठ रिश्ता स्थापित करने में समर्थ हुआ। विदेशी वाद्य होकर भी व्हायोलिन ने भारतीय संगीत में अपने लिए एक गौरवपूर्ण स्थान बनाकर आगे चलते जा रहा है, जहाँ और भी अनेक देशी-विदेशी वाद्यों का प्रचलन भारत में है। इसलिए व्हायोलिन तथा अन्य वाद्यों के प्रति भिन्न-भिन्न व्यक्ति तथा कलाकारों का अलग-अलग दृष्टिकोण यहाँ पाया जाता है। इस विषय में कुछ कलाकारों के साक्षात्कार के माध्यम से उनके अपने विचार मैंने प्राप्त किए है जो निम्नानुसार है।

पं. वी. बलसारा

भारत के श्रेष्ठ शास्त्रीय पियानो वादक पं. वीस्टास आर्देशीर बलसारा का जन्म 22 जून, 1922 में हुआ. इन्होंने अपनी माता नजमाई से संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा ली. तत्पश्चात् फ्रेमरोजी श्रफ बेचुमियाँ से शास्त्रीय संगीत का मार्गदर्शन प्राप्त किया. वे एक उच्चकोटि के कलाकार थे. वे पियानो के अलावा की-बोर्ड, मेलोडिका, हारमोनियम, अकार्डियन, युनिवक्स आदि वाद्य बजाने मे सिद्धहस्त थे. पं. बलसारा जी के संगीत सम्बन्धी ग्रन्थ "Western Chords in Indian Ragas with complete Sanctity" प्रकाशित हुए हैं. पियानो वादक के अलावा वे अच्छे संगीत निर्देशक, रचनाकार एवं शिक्षक थे. विश्व के विभिन्न देशों में जैसे अमरीका, इंग्लैण्ड, फिनलैण्ड, होलैण्ड, जापान, सुरिनाम, बांग्लादेश आदि में अपनी कला प्रस्तुत करके ये संगीत प्रेमी श्रोताओं के मन में उच्च स्थान बनाने में समर्थ हुए.

व्हायोलिन तथा अन्य विदेशी वाद्यों के प्रति
पं. वी. बलसारा का दृष्टिकोण

हमारी नज़र के सामने व्हायोलिन के सिवा और कोई ऐसा युरोपीय वाद्य नहीं है, जो हम भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रयोग कर सकते हैं। व्हायोलिन को हम एक परिपूर्ण वाद्य कह सकते हैं। क्योंकि इसे संगीत के सभी प्रकारों में प्रयोग किया जा सकता है। चाहे एकल वादन हो या संगत या तो वृन्दवादन अथवा कोई भी प्रकार। व्हायोलिन में तीन सप्तक होते है। इसका Range तीन सप्तक तक है, परन्तु भारतीय गज़ वाद्यों, जैसे - इसराज, सारंगी आदि वाद्यों में Range बहुत कम है। इनमें ज्यादा से ज्यादा देड़ सप्तक होता है। गायन में संगत के लिए इन वाद्यों में कोई समस्या नहीं देखी जाती क्योंकि कण्ठ-संगीत में देड़ से ज्यादा सप्तक प्रयोग नहीं कर सकते हैं, परन्तु वृन्दवादन के लिए ये वाद्य इतना उपयोगी नहीं है जितना की व्हायोलिन।

दूसरा वाद्य है पियानो, अब प्रश्न सामने आता है कि पियानो ये जो वाद्य है, ये Key board instrument है या String instrument है। उत्तर यह है कि इसे हम Key board instrument भी कह सकते हैं और String instrument भी कह सकते हैं। सन्तूर क्या है? सन्तूर एक String instrument है। हम लकड़ी से सन्तूर के तारों पर प्रहार करने से आवाज़ निकालते हैं। पियानो के अन्दर भी सन्तूर के माफ़िक तार होता है। पियानो को बजाने के लिए जब हम वाद्य की चाबी (Key) को दबाते है, तो उन चाबी (Key) के माध्यम से वाद्य के अन्दर हथौड़े जैसी लकड़ियाँ उन तारों पर प्रहार करती हैं और वहाँ से आवाज़ निकालती है। भिन्नता केवल इतनी ही कि पियानो में हम लकड़ी से नहीं मारते, सिर्फ चाबी दबाते हैं। अतः सन्तूर के जैसे इसे String instrument (तार वाद्य) भी कहा जा सकता है। तो सन्तूर में अगर शास्त्रीय संगीत बज सकता है तो पियानो में क्युँ नहीं? किन्तु पियानो बजाते समय एक बात हमें याद रखना पड़ता है कि पियानो में सब राग हम नहीं बजायेंगे। कुछ ऐसे राग हम परिहार करते हैं, जिसमें मीण्ड का काम बहुत जरूरी है या श्रुति-स्वर प्रयोग करना है, जो व्हायोलिन में सम्भव है, किन्तु पियानो में नहीं। अतः कुछ राग चयन करके हम अपना वादन करते हैं। वाद्य-संगीत की सभी विशेषताएँ, जैसे - आलाप, जोड़, झाला आदि को हम वाद्य के हिसाब से बजाते हैं। हम बाँये हाथ से कभी-कभी कॉर्ड पकड़ते

हैं, परन्तु शास्त्रीय संगीत में कॉर्ड बहुत सम्हाल के बजाना पड़ता है। जैसा कि अगर हम राग भूपाली बजायेंगे तो इसमें 'म' और 'नि' स्वर वर्जित है। भूपाली के पाँच स्वर, जैसे ' सा रे ग प ध' है। इनमें 'ध' के ऊपर अगर हम 'म' का कॉर्ड बजायेंगे तो ये अवश्य गलत है। अतः हमें दूसरा कोई कॉर्ड ढूँढ़ना पड़ता है। इस प्रकार से सोच समझकर हमें पियानो में शास्त्रीय संगीत का वादन करना पड़ता है। परन्तु ऐसा नहीं है कि पियानो में केवल शास्त्रीय संगीत ही बजता है, बल्कि फ़ोक, आधुनिक सभी प्रकार के संगीत इसमें बजाये जा सकते हैं। क्योंकि पियानो एक ऐसा परिपूर्ण वाद्य है जिसमें सात सप्तक होते है और ऊपर तार-सप्तक में जाकर जलतरंग का आभास होगा, मध्य में सितार का तो एकदम नीचे के सप्तक में सरोद का आभास होगा। पहले मैं पियानो में पाश्चात्य संगीत बजाता था, बाद में मेरी बड़ी बहन की प्रेरणा से मैंने इसमें भारतीय संगीत बजाना आरम्भ किया और बहुत सोच समझकर इसका अभ्यास किया। बचपन में कण्ठ-संगीत की शिक्षा मिलने के कारण इस क्षेत्र में मैं अधिक लाभान्वित हुआ। पहले-पहले एक विदेशी वाद्य समझकर लोगों ने इतना पसन्द नहीं किया किन्तु परवर्ती में सब लोगों से मुझे प्रेरणा मिली।

मैंने जोग साहब के साथ अनेक जुगलबन्दी की है। उनका व्हायोलिन और मेरा पियानो। बाँसुरी तथा क्लैरोनेट आदि वाद्यों के साथ भी पियानो की जुगलबन्दी हो सकता है, परन्तु सितार, सरोद के साथ उतनी अच्छी नहीं हो सकती जितना की इन वाद्यों के साथ, क्योंकि सितार, सरोद एवं पियानो तीनों ही प्रहार वाद्य हैं। तीनों में ही स्वर की लम्बाई कम है। क्लैरोनेट भी एक ऐसा वाद्य है जिसमें से मीण्ड नहीं निकाली जा सकती। परन्तु जैसे व्हायोलिन को जोग साहब ने अपनाया वैसे क्लैरोनेट को बंगाल में श्री राजन सरकार ने अपनाया था। वह इस वाद्य में से मीण्ड निकालते थे। मुम्बई में नौशाद साहब के staff group में भी एक क्लैरोनेट वादक थे, वह भी इसमें से मीण्ड निकालते थे।

हारमोनियम को भी हम विदेशी वाद्य कह सकते हैं। क्योंकि हमने सुना है कि हारमोनियम को जर्मन में मूलतः गारमोनियम कहा जाता था। यहाँ लाकर हारमोनियम कहा जाने लगा। ये भी तो Key Board का वाद्य है। अतः इसमें भी मीण्ड का काम नहीं होता है। बंगाल में इस वाद्य को शास्त्रीय वादन में पं. ज्ञान प्रकाश घोष ने अपनाया था। वह इस वाद्य के कुशल वादक थे। उनके साथ भी मैंने अनेक जुगलबन्दी के कार्यक्रम किए हैं। हारमोनियम

और पियानो की जुगलबन्दी अच्छी होती है। दोनों ही Key Board Instrument हैं किन्तु हारमोनियम का Long note और पियानो का Short note है इसलिए इसमें कोई समस्याएँ सामने नहीं आयी। प्रो. धीरेनचन्द्र मित्र भी एक बहुत ही अच्छे हारमोनियम वादक तथा गायक थे। अत: ये प्रत्येक कलाकार या वाद्यकार के उपर निर्भर रहता है कि कौन कलाकार कौन वाद्य को किस तरह से अपनाते हैं और कैसे वाद्य का उपयोग करते हैं।

व्हायोलिन के बारे में मैं कहना चाहुंगा कि उत्तर भारत में इस वाद्य का विकास अनेक कलाकारों के द्वारा हुआ है, किन्तु पं. वी. जी. जोग का जो योगदान इस क्षेत्र में है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण मान सकते है। वे एक ऐसे पण्डित व्यक्ति थे कि स्वतन्त्र वादन के अलावा भारत के सब बड़े-बड़े कलाकारों के साथ उन्होंने संगत की है। सबके साथ संगत करते-करते विभिन्न घरानों की शैलियाँ को उन्होंने आत्मसात कर लिया था। इसलिए उनको हम पण्डित मानते हैं। बंगाल में वे सालों से रहते हैं। यहाँ उन्होंने अनेक लोगों को व्हायोलिन की शिक्षा दी है। बंगाल में संगीत के विभिन्न क्षेत्रों में व्हायोलिन का प्रयोग हम देखते हैं। फ़ोक में भी लोग व्हायोलिन का उपयोग करते हैं। इस विषय में मेरा कहना है कि व्हायोलिन फ़ोक के Tone के लिए ठीक नहीं है। एक वाद्य है 'सारिन्दा' जो इसमें उपयोग होता है। व्हायोलिन के ब्रिज के ऊपर म्युट लगाया जाए तो सारिन्दा जैसी आवाज़ निकालती है। फ़ोक में या तो सारिन्दा बजाना चाहिए या तो व्हायोलिन के ब्रिज के ऊपर म्युट लगाके उसे सारिन्दा जैसे प्रयोग करना चाहिए। अन्य पाश्चात्य वाद्य का भी प्रयोग यहाँ है, लेकिन व्हायोलिन की तुलना से कम है।

(साक्षात्कार के आधार पर, दिनांक : 01-04-2003, कोलकाता)

श्रीमती दिपाली नाग

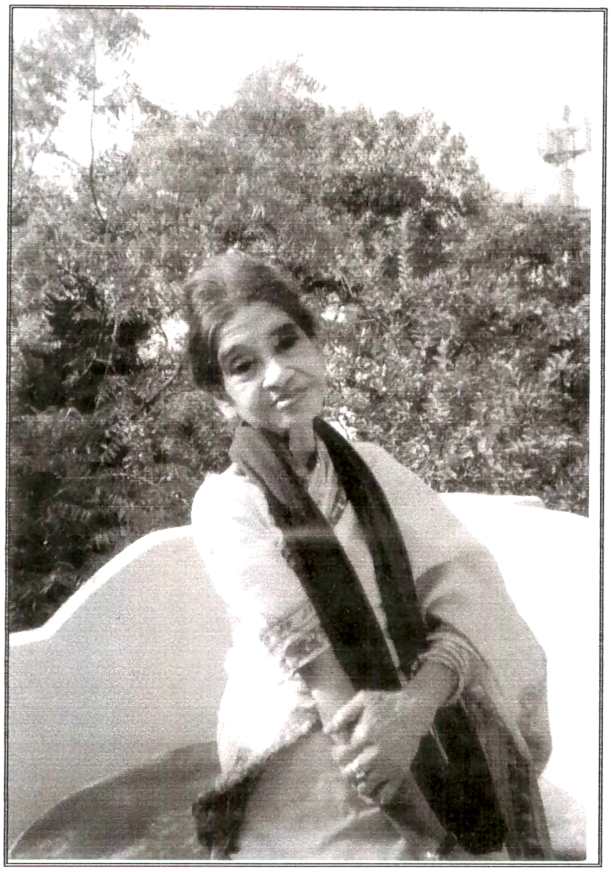

सुप्रसिद्ध शास्त्रीय संगीत एवं नजरुल संगीत गायिका श्रीमती दिपाली नाग का जन्म 22 फरवरी, 1922 में हुआ. शास्त्रीय संगीत की शिक्षा इन्होंने आगरा घराने के प्रसिद्ध कलाकार उस्ताद बशीर खाँ, उस्ताद तसादद्दुक हुसैन खाँ तथा उस्ताद फैयाज खाँ से प्राप्त की. अेच. अेम. वी. कम्पनी से इनके कई रेकार्डस प्रकाशित हुए. श्रीमती नाग के संगीत विषयक ग्रन्थ 'Rag Pradhan and a translation on notation of Western Music' एवं 'Ustad Faiyaaz Khan' प्रकाशित हुआ. इसके सिवाय इनके कतिपय लेख भी अंग्रेजी, हिन्दी तथा बांग्ला भाषा में प्रकाशित हुए है. देश के बड़े-बड़े संगीत समेलनों में इन्होंने भाग लेकर ख्याति प्राप्त की है. श्रीमती दिपाली नाग ने देश के अतिरिक्त अमरीका, इंग्लैण्ड, फ्रान्स, रशिया, ईरान, बांग्लादेश, श्रीलंका आदि देशों में भी अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया है. संगीत में महत्त्वपुर्ण योगदान के लिए इन्हें कई पुरस्कार प्राप्त हुये जिनमें उस्ताद अलाउद्दीन खाँ पुरस्कार, संगीत रिसर्च अकादमी पुरस्कार आदि उल्लेखनीय हैं.

व्हायोलिन तथा अन्य विदेशी वाद्यों के प्रति श्रीमती दिपाली नाग का दृष्टिकोण

भारतीय संगीत में युरोपीय या पाश्चात्य वाद्यों के प्रयोग की बात की जाए तो सबसे पहले हमें व्हायोलिन की ही याद आती है। क्योंकि युरोप से आए हुए वाद्यों में से व्हायोलिन ये वाद्य हमारे संगीत के साथ चारों तरफ से जुड़ गई है। दक्षिण में लोग इसका ज्यादा इस्तेमाल करते हैं। वहाँ इस वाद्य ने खास प्रभाव डाला है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि वहाँ सारंगी जैसे वाद्य नहीं हैं, इसलिए कुछ तो इस प्रकार की चाहिए। उत्तर भारत में व्हायोलिन का विकास दक्षिण की तुलना में देर से हुआ है। कुछ गुणियों ने इसका वादन आरम्भ किया था, जैसे - श्री गगन बाबू, उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब आदि। परन्तु इसके विकास में पं. वी. जी. जोग, गजानन बुवा जोशी, जी. एन. गोस्वामी इन कलाकारों ने सबसे ज्यादा योगदान दिया है। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब ने एकल वादन के हिसाब से नहीं, वह अपने मैहर बैण्ड के लिए ही बजाते थे, जो मैंने खुद सुना है। एक बार तबला वादक उपस्थित न होने के कारण उनके साथ मैंने तबला भी बजा दिया था, जो मेरी खुश किसमती थी। उस जमाने में उनके लिए व्हायोलिन बजाके वृन्दवादन के साधन एक बहुत ही बड़ी बात थी, जो उन्होंने किया हैं। व्हायोलिन के अलावा दूसरा पाश्चात्य वाद्य शास्त्रीय संगीत में नहीं देखा जाता है। लेकिन वृन्दवादन में उनका प्रयोग देखा जाता है। व्हायोलिन में शास्त्रीय संगीत की विशेषताओं को निकाला जा सकता है इसलिए ये वाद्य शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत प्रसिद्ध हो गया है। उदाहरण के लिए कहा जा सकता है, जैसे - राग दरबारी में ग, ध, नि का प्रयोग जिस प्रकार से होता है वह व्हायोलिन में करना सम्भव है, जो अन्य कोई विदेशी वाद्यों में नहीं।

अब बंगाल में सांगीतिक स्थिति के विषय में कहा जा सकता है कि यहाँ घर-घर में गाना-बजाना चालू था, अभी भी है। सब बड़े-बड़े कलाकार, जैसे - उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ, उस्ताद फैयाज खाँ साहब, सब लोग बंगाल आए और गायन प्रस्तुत करके खुश हुए। यहाँ वाद्य-संगीत का ज़ोर ज्यादा है। वाद्य-संगीत में सितार और सरोद का विकास व्यापक रूप से हुआ है। व्हायोलिन के विकास क्षेत्र में पं. वी. जी. जोग, जी. एन. गोस्वामी, शिशिरकणा धर चौधुरी इन कलाकारों का योगदान पाया जाता है। इनमें संगत हो या एकल वादन दोनों क्षेत्रों में सबसे ज्यादा योगदान पं. वी. जी. जोग ने दिया है। इनके पहले अप्रत्यक्ष

रूप से उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब का भी योगदान रहा। संगत वाद्य के रूप में यहाँ हारमोनियम का अधिक प्रयोग है। कुछ कलाकार सारंगी से भी संगत करते हैं। इसराज का प्रयोग बांग्ला गीतों के साथ ज्यादा होता है। शास्त्रीय संगीत में अच्छी संगत करने के लिए जो अभ्यास की आवश्यकता है, वह आज कम हो गया है। हारमोनियम बजाना सरल है। कोई भी अगर चाहे तो अभ्यास करके इसे बजा सकता है, परन्तु व्हायोलिन तथा सारंगी आदि बजाने के लिए कठिन अभ्यास करना पड़ता है। देशी हो या विदेशी, बंगाल प्रदेश में सितार-सरोद के बाद व्हायोलिन का प्रयोग देखा जाता है। अन्य पाश्चात्य वाद्यों, जैसे – गिटार, क्लैरोनेट आदि का प्रयोग सुगम-संगीत में होता है।

(साक्षात्कार के आधार पर, दिनांक : 03-03-2003, कोलकाता)

पं. डी. के. दातार

सुप्रसिद्ध व्हायोलिन वादक पं. डी. के. दातार का जन्म 14 अक्तूबर, 1932 में हुआ. वे पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर की परम्परा से सम्बन्धित तथा पं. डी. वी. पलुस्कर के भतीजे हैं. व्हायोलिन वादन की शिक्षा इन्होंने पं. विघ्नेश्वर शास्त्री से प्राप्त की. पं. डी. वी. पलुस्कर से भी इन्हें मार्गदर्शन प्राप्त हुआ. आकाशवाणी तथा दूरदर्शन में नियमित वादन प्रस्तुति के अतिरिक्त विभिन्न संगीत सम्मेलनों में भी वे अपना वादन प्रस्तुत कर रहे हैं. शास्त्रीय वाद्य-संगीत में महत्त्वपुर्ण योगदान के दौरान सन् 2004 में उन्हें 'पद्मभूषण' उपाधि से सम्मानित किया गया और सन 1996 में संगीत नाटक अकादमी का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ. इन्होंने विश्व के प्रमुख देश जैसे - अमरीका , इंग्लैण्ड, कैनडा, जापान, आईसल्याण्ड, सिंगापुर आदि देशों में अपनी कला का प्रदर्शन किया.

व्हायोलिन तथा अन्य विदेशी वाद्यों के प्रति पं. डी. के दातार का दृष्टिकोण

उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में व्हायोलिन का प्रवेश Concert level के ऊपर हुआ है। उत्तर भारत में यह वाद्य करीब-करीब 20वीं सदी के प्रारम्भ में प्रवेश किया। परन्तु दक्षिण भारत में इससे काफी पहले अर्थात् 19वीं सदी के प्रारम्भ में इसका प्रचलन शुरू हो गया था। युरोपीय लोग पहले दक्षिण में आये थे इसलिए वहाँ से व्हायोलिन का प्रचलन शुरू हुआ। दक्षिण भारत के लोगों ने युरोपीय लोगों से इस वाद्य का वादन सुना और उनकों ऐसा लगा कि ये वाद्य भारतीय संगीत के लिए उपयोगी हैं। इसलिए उन्होंने इसकों अपनाने की कोशिश की। परन्तु जल्द ही वे व्हायोलिन का वादन शुरू नहीं कर पाए। दो-एक पीढ़ी के बाद ही उनको इसका वादन हासिल हो पाया। दक्षिण के प्रसिद्ध कलाकार पं. पी. ए. सुन्दरम् अय्यर एवं उत्तर भारतीय संगीत में पं. गजानन राव जोशी ने मंच पर बैठकर बजाना शुरू किया एवं व्हायोलिन को संगीत-समारोह में प्रतिष्ठा दिलवाई। उसके बाद गजानन राव जोशी जी के शिष्यों में श्रीधर पार्सेकर, गजानन कर्णाड आदि इस क्षेत्र में आये तत्पश्चात पं. वी. जी. जोग व्हायोलिन वादक के रूप में आये। एक और कलाकार थे हुसैन लाल जी, जो पाश्चात्य शैली में वादन करते थे। इन कलाकारों के द्वारा व्हायोलिन की प्रतिष्ठा उत्तर भारतीय संगीत में हुई। उनके बाद पं. गोपाल कृष्णन् एवं श्रीमती एन् राजम् दक्षिण भारत से उत्तर भारत में आये और उत्तर हिन्दुस्तानी पद्धति में व्हायोलिन की तालीम प्राप्त करके इस वाद्य का काफी प्रचार किया। मेरे गुरूजी थे पं. विघ्नेश्वर शास्त्री। उनसे शिक्षा प्राप्त करके मैंने अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किए। पहले मैं पं. डी. वी. पलुस्कर जी के साथ संगत करता था। उसके बाद अनेक गुणियों के साथ संगत किया। इस प्रकार से यहाँ व्हायोलिन का प्रचार-प्रसार होता गया।

भारत में व्हायोलिन को अधिकतर तीन पद्वति से मिलाकर बजाया जाते है। जैसे -

1. म़ सा प रें 2. प़ सा प सां 3. स़ा प़ सा प

इनमें से प़ सा प सां एवं स़ा प़ सा प ये दो पद्धतियाँ शास्त्रीय वादन में प्रयोग होती हैं और म़ सा प रें इस पद्धति को सुगम-संगीत तथा फ़िल्म-संगीत में वादन के लिए प्रयोग किया जाता है। शास्त्रीय वादन की दोनों पद्धतियों में स़ा प़ सा प की सुविधा ज्यादा है। क्योंकि इसमें मन्द्र-सप्तक पूरा मिलता है, जहाँ प़ सा प सां पद्धति में आधा मिलता है।

भारतीय कुछ राग हैं, जो खरज में ही खुलते हैं, जैसे दरबारी, आभोगी आदि। ऐसे रागों की विशेषता यह है कि इन्हें मन्द्र और मध्य-सप्तकों में ही ज्यादा गाया-बजाया जाता है। इन रागों को स़ा प़ सा प पद्धति में अपनी विशेषताओं के साथ पूर्ण रूप से प्रकट किया जा सकता है, जहाँ प़ सा प सां में यह राग अधूरा रह जाता है।

भारत में व्हायोलिन का प्रवेश तथा प्रचार-प्रसार अधिक प्राचीन न होने के कारण इसका कोई घराना प्रतिष्ठित नहीं हो पाया। इसलिए इसको दो अंगों से ही बजाया जाता है, जैसे - 1. गायकी अंग 2. गत्कारी या तन्त्रकारी अंग । मेरा विचार यह है कि इसमें गायकी बजनी चाहिए। क्योंकि व्हायोलिन गज़ का साज़ है। भारतीय गज़ वाद्यों इसराज, सारंगी, दिलरूबा इन सब में गायकी बजती है, इसी हिसाब से व्हायोलिन में भी गायकी बजनी चाहिए।

एक बात जरूर है कि यह साज़ बजाना बहुत कठिन है। क्योंकि जिस वाद्य में पर्दे नहीं होते हैं वह बजाना कठिन होता है। इसलिए अगर दस विद्यार्थियों ने व्हायोलिन सीखना शुरू किया तो इनमें से तीन टिकते है। परन्तु फिर भी भारत में अन्य गज़ वाद्यों से आज व्हायोलिन ज्यादा लोकप्रिय तथा प्रायोगिक वाद्य है। आज से 60-70 साल पहले उत्तर भारत में दिलरूबा, इसराज आदि वाद्य अधिक लोकप्रिय थे। बंगाल तथा महाराष्ट्र के हर घर में कोई न कोई इसराज जरूर बजाते थे, परन्तु आज इसका उपयोग नहीं के बराबर है। किन्तु सारंगी के कुछ कलाकार हम देखते हैं, जो एकल वादन तथा संगत भी करते हैं। इन सभी गज़ वाद्यों में व्हायोलिन का प्रयोग आज अधिक होता है। क्योंकि संगीत के विभिन्न क्षेत्रों में यह वाद्य बहुत उपयोगी है। फ़िल्म-संगीत में तो 70 से 80 वादक एक साथ व्हायोलिन बजाते है। फ़िल्म-जगत में इसका उपयोग अधिक है। यह विदेशी वाद्य जरूर है, परन्तु आज भारतीय संगीत के साथ इसका सम्बन्ध जितना गहरा है उतना अन्य किसी विदेशी वाद्य का नहीं। अन्य विदेशी वाद्यों, जैसे - पियानो, क्लैरोनेट, गिटार, सेलो आदि अनेक वाद्यों को भारतीय संगीत के विविध क्षेत्र में विशेषत: फ़िल्म-संगीत के क्षेत्र में प्रयोग होते हुए देखा जाता है। परन्तु शास्त्रीय वादन के लिए इन वाद्यों में कुछ सीमाएँ आवश्य हो जाती हैं। इसलिए शास्त्रीय वादन-क्षेत्र में इन्हें नहीं अपनाया गया। इनमें व्हायोलिन एक ऐसा परिपूर्ण वाद्य है, जिसने शास्त्रीय संगीत-क्षेत्र से लेकर भारतीय संगीत के सभी क्षेत्रों में अपने लिए एक विशेष स्थान बनाने में समर्थ हो गया।

(साक्षात्कार के आधार पर, दिनांक : 03-01-2005, मुम्बई)

डॉ. एन. राजम्

प्रसिद्ध व्हायोलिन वादक श्री ए. नारायण अय्यर की सुपुत्री डॉ. एन. राजम् का जन्म सन् 1939 में अर्नाकुलम (केरल) में हुआ. संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता ए. नारायण अय्यर से प्राप्त हुयी. तत्पश्चात् इन्होंने संगीत कलानिधि सुब्रह्मण्यम् अय्यर से व्हायोलिन की तकनीक और रागों का ज्ञान अर्जित किया. राजम् जी ने सन् 1955 में संगीत मार्त्तण्ड पं. ओंकारनाथ ठाकुर का शिष्यत्त्व ग्रहण किया एवं व्हायोलिन जैसे तन्त्र वाद्य पर गायकी अंग की अवतारणा करने में सफलता प्राप्त की. लम्बी अवधि तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कला संकाय अध्यक्ष के पद को सुशोभित कर चुकीं है. डॉ. एन. राजम् को 'पद्मश्री' और 'पद्मभूषण' का अलंकरण तथा केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी सम्मान सहित कई अन्य पुरस्कार भी प्राप्त हुये हैं.

व्हायोलिन तथा अन्य विदेशी वाद्यों के प्रति डॉ. श्रीमती एन. राजम् का दृष्टिकोण

व्हायोलिन एक अद्‌भुत वाद्य यन्त्र है। यह सचमुच आश्चर्यजनक है कि इसकी संरचना के रहस्य को जानने के लिए काफी प्रयास किया गया और फिर भी इस रहस्य को पूर्ण रूप से नहीं जान पाया गया है। उस व्यक्ति की अनुपम सूझ-बूझ और महानता को हमें श्रद्धा और सम्मान करना चाहिए जिसने इस वाद्य यन्त्र का निर्माण किया। यह एक ऐसा वाद्य है, जिसके संरचनात्मक रहस्यों ने शताब्दियों से वैज्ञानिकों व संगीतज्ञों के समकक्ष एक समस्या उत्पन्न कर दी है। वैज्ञानिक इस विश्वास में एकमत हैं कि व्हायोलिन अपने-आपमें एक पूर्ण वाद्य है और इसमें किसी प्रकार के सुधार की सम्भावना नहीं है। वे यह भी मानते हैं कि व्हायोलिन के निर्माण का रहस्य इसके आविष्कारक को अकस्मात् ही दैवी प्रेरणा अथवा संयोगवश ही मिला होगा। दूसरे शब्द में, व्हायोलिन का निर्माण सचेतन मानसिक प्रक्रिया से नहीं; अपितु संयोगिक अथवा दैविक प्रेरणास्वरूप हुआ।

अपने भारत में यह वाद्य अनुमानतः तीन सौ वर्ष पहले आया। ब्रिटिश के ज़माने में कई पाश्चात्य व्हायोलिन वादक उनके Band party के साथ भारत आये थे। उन लोगों को जब अपने कलाकारों ने सुना तो इन्हें बड़ा अच्छा लगा इस वाद्य का वादन सुनके। तब इन्होंने इसे अपनाने का निर्णय कर लिया था। तत्पश्चात् धीरे-धीरे उन पाश्चात्य वादकों से यहाँ के कलाकारों ने थोड़ा-बहुत सीखने के बाद अपने संगीत के लिए आवश्यक कुछ नए तकनीकों को ढूँढ़ निकाला। ये दक्षिण भारत की बात है, क्योंकि सबसे पहले वहीं इसको अपनाया गया था। वहाँ के कलाकारों ने कर्नाटक संगीत के व्हायोलिन में किस तरह बजाया जा सके तथा गज़ संचालन, अँगुली चलाना आदि को ढूँढ़ निकाला। तब कई लोगों ने व्हायोलिन सीखना आरम्भ किया। उसके बाद काफी साल बित गए इस वाद्य को पूरी तरह से अपनाने में। हमें खुशी है कि भारतीय गज़ वाद्यों, जैसे - सारंगी, इसराज आदि के साथ एक और गज़ वाद्य युक्त हो गया एवं उसे अपना समझने की स्थिति आयी।

पिछले तीन सौ वर्षों से व्हायोलिन दक्षिण भारत में है इसलिए वहाँ कलाकार भी बहुत है। प्रारम्भ से ही दक्षिण में यह वाद्य गायन की संगति में इस्तेमाल होने लगा क्योंकि वहा

सारंगी नहीं था एवं कण्ठ-संगीत की शैली को व्हायोलिन में अच्छी तरह बजाया जा सकता था। इसलिए गायन में संगति वाद्य के रूप में प्रयोग आरम्भ होने के कारण इसकी लोकप्रियता और भी अधिक बढ़ी तथा कई लोग इसमें रूचि रखने लगे।

उत्तर भारत की बात रही तो यहाँ करीब-करीब सौ वर्ष से व्हायोलिन का प्रचलन आरम्भ हुआ है। गायन में संगति के लिए उस समय यहाँ सारंगी का प्रचलन था इसलिए व्हायोलिन को अपनाने की आवश्यकता नहीं हुई। फलतः दक्षिण की तुलना में यहाँ काफी देर से इसका वादन आरम्भ हुया। उत्तर भारतीय संगीत-क्षेत्र में जब व्हायोलिन का आविर्भाव हुआ उस समय सितार, सरोद ये सब वाद्य प्रचार में थे एवं गायन की संगति के लिए सारंगी पहले से ही था। अतः व्हायोलिन को सितार, सरोद के समकक्ष ही स्थान दिया गया। इसलिए सितार, सरोद में जो शैली (गत्कारी या तन्त्रकारी) बजाई जाती थी, आम तौर पर उसी को ही व्हायोलिन पर भी अपनाया गया। मेरा ऐसा विचार है कि व्हायोलिन एक गज़ वाद्य होने के कारण तथा इसमें पर्दा न होने के कारण व्हायोलिन में Continuity of tone उपलब्ध है। अत: जिन वाद्यो में Continuity of tone उपलब्ध होती है, उसमें गायकी अंग आसानी से बजाया जा सकता है। परन्तु व्हायोलिन एक ऐसा वाद्य है कि इसमें गायकी तथा गत्कारी दोनों शैलियों का वादन सम्भव है। उत्तर भारत में गत्कारी इसलिए बजाई जाती है क्योंकि व्हायोलिन जब यहाँ आया तब बाकी वाद्यों पर भी गत्कारी बजाई जाती थी। अतः उसी शैली को इसमें भी अपनाया गया। गायन में संगति के रूप में उस समय इसको नहीं अपनाया गया। अगर संगत की दृष्टि से अपनाया गया होता तो हो सकता है कि गायकी उसी समय से विकसित हुई होती। किन्तु संगत में सारंगी का प्रचलन व्यापक रूप से था इसलिए दूसरे कोई वाद्य की जरूरत नहीं हुई।

व्हायोलिन एक सम्पूर्ण वाद्य है। इसलिए पाश्चात्य संगीत हो या दक्षिण भारतीय अथवा उत्तर भारतीय इसमें जो भी चाहे बजाया जा सकता है। उत्तर भारतीय संगीत के जितनी भी विधाएँ हैं, जैसे - ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी, भजन आदि सभी विधाओं को इसमें हूबहू कण्ठ-संगीत के जैसे बजाया जा सकता है।

व्हायोलिन में गायकी अंग बजाने के लिए ख्याल, ठुमरी आदि बजाये जाते हैं। ख्याल में जो शब्द है, जो साहित्य है उसी के अनुसार गज़ का प्रयोग होता है और गत्कारी में

वाद्य-संगीत के जो गतें है उसी का ही वादन होता है। इन वादनों के लिए व्हायोलिन के तारों को कलाकार अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार स़ा प़ सा प, प़ सा प सां तथा म़ सा प रें इन पद्धतिओं से मिलाते हैं। इन्हें अलग-अलग तरीके से मिलाने की पद्धति शुरू से चली आ रही है। इनमें जहाँ तक मेरा अपना अनुभव है कि स़ा प़ सा प में पूरा चार सप्तक सम्पूर्ण रूप से मिलता है और बाकी पद्धतिओं में आधा सप्तक मन्द्र में और आधा सप्तक तार-सप्तक में कट जाता है। संपूर्ण रूप से इनमें तीन ही सप्तक मिलते हैं।

शास्त्रीय वादन के अतिरिक्त संगीत के अन्य क्षेत्र में भी व्हायोलिन का प्रयोग होता है। आज-कल फिल्म-संगीत में इसका प्रयोग सबसे ज्यादा देखा जाता है। मेरे ख्याल से अन्य पाश्चात्य वाद्यों में पियानो, क्लैरोनेट आदि वाद्यों में कुछ लोग शास्त्रीय वादन प्रस्तुत करते है।

जब से भारत में व्हायोलिन का आगमन हुआ तब से धीरे-धीरे यह वाद्य लोकप्रिय होता गया। इस वाद्य के प्रति इतना अपनापन हो गया है कि आज लोगों के मन में यह भावना नहीं है कि व्हायोलिन एक विदेशी वाद्य है।

(साक्षात्कार के आधार पर, दिनांक : 29-03-2005, बड़ौदा)

पं. उल्हास कशालकर

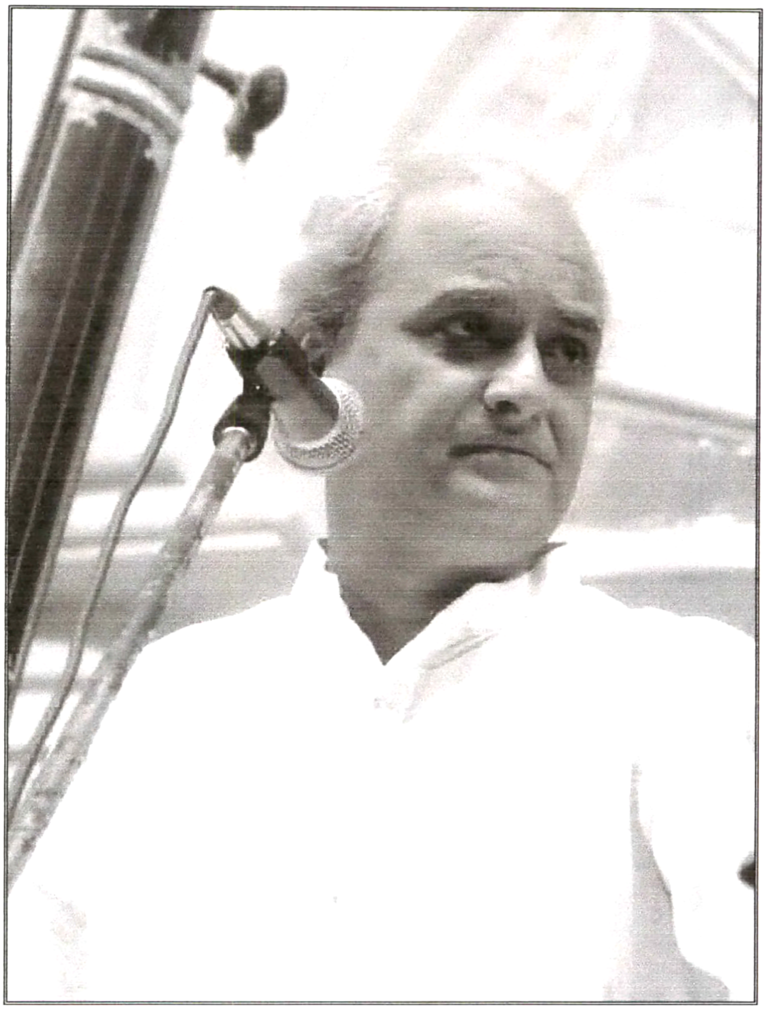

पं. उल्हास कशालकर का जन्म महाराष्ट्र के एक संगीत परिवार में हुआ. इन्होंने ग्वालियर एवं जयपुर दोनों घरानों की गायकी को आत्मसात किया. संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा इन्होंने अपने पिता श्री एन. डी. कशालकर से प्राप्त की. तत्पश्चात् वे पं. राम मराठे एवं पं. गजाननबुवा जोशी से शास्त्रीय संगीत की तालीम हासिल की. ग्वालियर एवं जयपुर घराने के प्रतिनिधि कलाकार पं. उल्हास कशालकर ने देश के अतिरिक्त अमरीका, इंग्लैण्ड, कैनडा, फ्रान्स, अरब अमिरात, बांग्लादेश आदि देशों में कार्यक्रम प्रस्तुत किये. वर्तमान में वे संगीत रिसर्च अकादमी कोलकाता से सम्बद्ध है.

व्हायोलिन तथा अन्य विदेशी वाद्यों के प्रति
पं. उल्हास कशालकर का दृष्टिकोण

हिन्दुस्तानी संगीत में व्हायोलिन का प्रयोग आज हम करिबन सौ साल से देख रहे हैं। व्हायोलिन को हिन्दुस्तानी संगीत में सब लोगों ने अपनाया। इसके बहुत महान कलाकार भी हिन्दुस्तानी संगीत में हुए हैं। ये हालाकि विदेशी वाद्य जरूर है लेकिन हमारे संगीत में जो मीण्ड का काम या तो सुरों के अलग-अलग दरज़े से उसको पेश करना, गमक, खटका, मुर्की ये सभी प्रकार व्हायोलिन में आ सकते हैं और इसलिए ये वाद्य हिन्दुस्तानी संगीत में स्वतन्त्र वादन या साथ-संगत में भी अच्छा प्रयोग हो सकता है। सारंगी के बाद मेरे ख्याल से व्हायोलिन कण्ठ-संगीत के लिए बहुत उपयुक्त है और बहुत से कलाकारों ने संगत भी की है। गले से जो चीज़ निकलती है जैसा कि - गमक, खटका, मुर्की, साँस का नियन्त्रण या किसी भी सुर से किसी भी सुर तक जाना आदि व्हायोलिन में किया जा सकता है। परन्तु ये सभी कलाकारों के अभ्यास और सोच के उपर निर्भर करता है। दक्षिण भारत में लोगों ने व्हायोलिन को बहुत दिनों से अपनाया है। तकनीकी दृष्टि से देखा जाए तो वहाँ की तकनीक बहुत अच्छी है। आज-कल हिन्दुस्तानी संगीत भी इस वाद्य में दक्षिण भारतीय तकनीक से लोग बजाते हैं, जो बहुत अच्छा लगता है। उन्होंने हिन्दुस्तानी तकनीक को और भी समृद्ध किया है। फलतः गले की चीज को और सही तरीके से निकाला जा सकता है। उसकी Tonal Quality भी बढ़ जाती है, जो संगत के लिए भी अधिक सहायक होती है। दक्षिण भारत में सारंगी न होने के कारण संगत वाद्य के रूप में व्हायोलिन का ही इस्तेमाल होता है, इसलिए वहाँ इस वाद्य के कलाकार भी अनेक हैं। उत्तर भारत में व्हायोलिन को अधिक लोकप्रिय बनाने में पं. गजानन बुवा जोशी, पं. वी. जी. जोग आदि कलाकारों ने बहुत योगदान दिया है। परवर्ती में इसके और भी अनेक कलाकार हुए।

पाश्चात्य वाद्यों में व्हायोलिन के अलावा और भी बहुत सारे वाद्य यहाँ हैं, परन्तु शास्त्रीय संगीत में उनका प्रयोग नहीं है। केवल गिटार का थोड़ा-बहुत प्रचलन इसमें देखा जाता है। लेकिन शास्त्रीय संगीत के लिए उपयोगी बनाने के लिए गिटार में कुछ परिवर्तन किए गए तथा भारतीय पद्धति में बजाने के लिए नयी पद्धति को भी अपनाया गया। अन्य पाश्चात्य वाद्यों को भारतीय सुगम-संगीत के क्षेत्र में सहयोगी वादन के लिए प्रयोग किया जाता है।

मेरे गुरूजी पं. गजानन बुवा जोशी गायन में सिद्धहस्त थे, इसलिए उनका व्हायोलिन वादन भी गायकी अंग में होता था। सर्वप्रथम उन्होंने व्हायोलिन को महाराष्ट्र के कीर्त्तन में संगत के रूप में प्रयोग किया। परवर्ती में केवल स्वतन्त्र वादन ही करते थे। उस काल महाराष्ट्र में कीर्त्तन के साथ मन्दिरों में व्हायोलिन बजाया जाता था, परन्तु आज-कल उतना प्रयोग नहीं देखा जाता है। किन्तु बंगाल के कीर्त्तन में इसका प्रचलन आज भी है।

बंगाल में आज जो परिस्थिति हम देखते हैं, आम तौर पर यहाँ सितार, सरोद, तबले के बहुत अच्छे-अच्छे कलाकर हैं। पुराने ज़माने में भी थे, आज भी हैं। एक बहुत बड़े कलाकार है, जिनका योगदान बंगाल के व्हायोलिन वादन के क्षेत्र में पाया जाता है, वह हैं पं. वी. जी. जोग। उनके अनेक शिष्य हैं जो आज इस क्षेत्र में योगदान दे रहे हैं। प्रो. शिशिरकणा धर चौधुरी का भी महत्त्वपूर्ण योगदान इस क्षेत्र में पाया जाता है। अन्त में मैं इतना कह सकता हूँ कि बंगाल के लोगों में सांगीतिक समझ है। देशी हो या विदेशी जो भी अच्छा उसे अपनाने में वे रूचि रखते हैं।

(साक्षात्कार के आधार पर, दिनांक : 08-02-2005, कोलकाता)

प्रो. वी. सी. रानाड़े

प्रसिद्ध व्हायोलिन वादक प्रो. वी. सी. रानाड़े का जन्म 7 फरवरी, 1935 में हुआ. संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा इन्होंने अपने पिता स्व. चिन्तामण रानाड़े जी से प्राप्त की, जो ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध संगीतज्ञ पं. मिराशी बुआ के शिष्य थे. तत्पश्चात् अपने चाचा श्री भालचन्द्र रानाड़े, पं. स. भ. देशपाण्डे और पं. एस. एन. रातनजनकर जी से इन्होंने मार्गदर्शन प्राप्त किया. वे आकाशवाणी के उच्च श्रेणी के व्हायोलिन वादक है. प्रो. वी. सी. रानाड़े आकाशवाणी, दूरदर्शन के अतिरिक्त देश के बड़े-बड़े संगीत सम्मेलनों में भाग लेकर प्रसिद्धि प्राप्त की. सन् 1958 से 1984 तक इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ में कार्य करने के पश्चात् वर्तमान में महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा के फैकल्टी ऑव् परफॉर्मिंग आर्टस् वाद्य-विभाग में प्रोफेसर के पद से सेवानिवृत्त हुए. संगीत क्षेत्र में योगदान के लिए मुम्बई के सुर सिंगार संसद द्वारा इन्हें सुरमणि (1967) एवं शारंगदेव (1995) पुरस्कार दिया गया.

व्हायोलिन तथा अन्य विदेशी वाद्यों के प्रति प्रो. पी. सी. रानाड़े का दृष्टिकोण

विदेशी वाद्यों में व्हायोलिन यह एक ही ऐसा वाद्य है, जो भारतीय संगीत के किसी भी विधा को पूर्ण रूप से प्रस्तुत करने के लिए सक्षम है। चाहे लोक-संगीत हो, सुगम-संगीत हो, उपशास्त्रीय संगीत हो या शास्त्रीय संगीत हो, किसी भी विधा को उसकी सुरावट, लयात्मक सौन्दर्य, भावनात्मक अभिव्यक्ति, रसात्मक सौन्दर्य आदि के साथ बहोत प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में, मीण्ड, घसीट, गमक आदि आवश्यक तत्त्व, किसी भी राग के व्यक्तिगत को प्रकट करने के लिए आवश्यक है और यह सब व्हायोलिन वाद्य पर ही सम्भव है। इसी कारण भारतीय संगीत में यह वाद्य, अपनी लम्बी यात्रा करने के बाद आज बहुत लोकप्रिय है। किसी भी सार्वजनिक शिक्षण संस्थाओं में सितार के साथ व्हायोलिन का भी प्रशिक्षण दिया जाता है। अन्य देशी व विदेशी वाद्य, जैसे - सारंगी, दिलरूबा, सरोद, गिटार, हार्मोनियम आदि वाद्यों का प्रशिक्षण का फैलाव उतना नहीं है जितना व्हायोलिन प्रशिक्षण का है।

व्हायोलिन स्वतन्त्र वादन (Solo) के लिए जितना सक्षम है उतना ही साथ-संगत के लिए भी है। बहोत से शास्त्रीय संगीत के गायक अपनी साथ-संगत के लिए सारंगी से ज्यादा व्हायोलिन पसन्द करते है। पुरूष गायकों के साथ व स्त्री गायिकाओं के साथ संगत करने के लिए पुरूष की व स्त्री की आवाज़ (Pitch) की भिन्नता के कारण व्हायोलिन के तार प़ सा प सां अथवा स़ा प़ सा प इस पद्धति से मिलाने की आवश्यकता पड़ती है। आज सर्व साधारण गायक वर्ग हार्मोनियम को संगत के लिए आग्रह करते है, परन्तु प्रतिष्ठा के दृष्टि से देखा जाय तो व्हायोलिन ही संगत के लिए श्रेष्ठ वाद्य है। कर्नाटक संगीत का गायकवर्ग तो व्हायोलिन की संगत के बिना अधूरा रहता है। सुगम या फिल्मी-संगीत में व्हायोलिन का प्रयोग होता ही है और वाद्यवृन्द (Orchestra) तथा फ़िल्मी-गीतों के साथ बजनेवाले वाद्य संगीत व्हायोलिन के बिना नहीं होता, परन्तु सुगम या फ़िल्मी-संगीत में पाश्चात्य पद्धति से बजानेवाले व्हायोलिन वादकों को विशेष प्राधान्य दिया जाता है। अतः म़ सा प रें इस पाश्चात्य पद्धति से तार मिलाकर, पाश्चात्य तकनीक से बजानेवाले व्हायोलिन वादक ज्यादा पसन्द किए जाते है।

बंगाल में सरोद, सितार, सुरबहार, इसराज, दिलरूबा आदि वाद्यों का पहले से ही प्रचार व प्रसार रहा है। भारतीय संगीत में व्हायोलिन व अन्य विदेशी वाद्यों का प्रयोग बंगाल से ही प्रारम्भ हुआ, ऐसा माना जा सकता है। अंग्रेज़ों ने बहोत से पाश्चात्य वाद्यों को बंगाल में लाया, उनमें से व्हायोलिन यह एक ही ऐसा वाद्य भारतीय संगीत में अपनी स्वतन्त्र जगह बना सका। अर्थात् इसका प्रथम श्रेय बंगाल के संगीतज्ञों को तो देना ही पड़ेगा। बंगाल से शुरू होकर कालान्तर से बाकी भारतीय प्रदेशों में व्हायोलिन का प्रचार-प्रसार होते-होते आज सम्पूर्ण भारत में व भारतीय संगीत में यह वाद्य लोकप्रिय है।

(साक्षात्कार के आधार पर, दिनांक : 17-04-2008, बड़ौदा)

पं. अरुण भादुड़ी

पं. अरुण भादुड़ी का जन्म पश्चिम बंगाल के मुर्शिदाबाद जिले में हुआ. संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा इन्होंने उस्ताद सगीरुद्दीन खाँ से प्राप्त की. तत्पश्चात् रामपुर घराने के प्रसिद्ध संगीतज्ञ उस्ताद इस्तियाक हुसैन खाँ से शास्त्रीय संगीत की शिक्षा प्राप्त की. पं. अरुण भादुड़ी को पं. ज्ञान प्रकाश घोष जी से भी मार्गदर्शन मिला. वे आकाशवाणी एवं दूरदर्शण के उच्च श्रेणी के कलाकार हैं. वह संगीत के एक योग्य शिक्षक एवं चिन्तक हैं. संगीत-क्षेत्र में योगदान के लिए सन् 1994 में सल्टलेक कल्चरल असोसिएशन द्धारा उन्हें यदुभट्ट पुरस्कार दिया गया. देश के अतिरिक्त इन्होंने अमरीका, इंग्लैण्ड, जापान, थाइलैण्ड, बांग्लादेश आदि देशों में अपना सफल कार्यक्रम प्रस्तुत किया. वर्तमान में पं. अरुण भादुड़ी संगीत रिसर्च अकादमी कोलकाता से सम्बद्ध है.

व्हायोलिन तथा अन्य विदेशी वाद्यों के प्रति पं. अरूण भादुड़ी का दृष्टिकोण

पुर्तगीज़, फ्रेंच, ब्रिटिश आदि युरोपीय जातिओं के आगमन के साथ उनके उपयोगी वाद्यों को भी भारत लाया गया जो आज तक संगीत के विभिन्न क्षेत्र में प्रयोग होते हुए दिखाई देता है। ब्रिटिश काल में शास्त्रीय संगीत के साथ संगत वाद्य के रूप में सारंगी का प्रयोग होता था एवं आज भी है, परन्तु आज व्हायोलिन का प्रयोग भी स्वतन्त्र वादन के साथ-साथ संगत वाद्य के रूप में देखा जाता है। अन्य पाश्चात्य वाद्यों जैसे - पियानो, गिटार, क्लैरोनेट, सैक्सॉफोन, ज़ाईलोफोन आदि का प्रयोग सुगम-संगीत में ही दृष्टिगोचर होता है। प्रारम्भ में शास्त्रीय संगीत तथा अन्य क्षेत्र, जैसे - जात्रा, लोक-संगीत आदि में क्लैरोनेट का प्रयोग शुरू हुआ था, परन्तु आज नहीं के बराबर है। इन सभी वाद्यों में व्हायोलिन ही ऐसा वाद्य हो गया जिसे भारतीय संगीत के सभी क्षेत्रों में सफलता के साथ प्रयोग होते हुए दिखाई देता है। शास्त्रीय संगीत में तो है ही, इसके अतिरिक्त गाँव प्रधान बंगाल के लोक-संगीत के विभिन्न प्रकार तथा अन्य क्षेत्र में भी इस वाद्य का प्रयोग देखने को मिलता है, जैसे - जात्रा गान, कीर्त्तन, मनसामंगल, पालागान, कविगान, बाउल आदि। इनमें कीर्त्तन और बाउल-गीत प्रकारों में इसका अधिक प्रयोग हो रहा है। बंगाल में व्हायोलिन का प्रयोग ठीक कब से शुरू हुआ यह कहना बहुत कठिन है, परन्तु काफी लम्बे समय से इसका प्रयोग हो रहा है यह सुना जाता है। लगभग ब्रिटिश काल से ही प्रयोग आरम्भ हो गया होगा, किन्तु प्रारम्भ में भारतीय कलाकार शायद इसमें पाश्चात्य वादन ही करते थे एवं परवर्ती में भारतीय शास्त्रीय संगीत का वादन आरम्भ हुआ।

जिस प्रकार से सारंगी एक गज़ वाद्य है, उसी प्रकार व्हायोलिन भी। सारंगी में गायन के जिन अंगों को दिखाया जा सकता है, उसी प्रकार व्हायोलिन में भी सम्भव है। परन्तु पियानो आदि वाद्य में मीण्ड, गमक आदि विशेषताओं को निकालना सम्भव न होने के कारण बहुत से राग इनमें नहीं बजाये जा सकते, परन्तु व्हायोलिन में श्रुति का प्रयोग, मीण्ड, गमक, सूत आदि सभी विशेषताओं को प्रकट किए जाने के कारण यह वाद्य जिस प्रकार से भारतीय संगीत के लिए उपयुक्त है, उसी प्रकार पाश्चात्य संगीत में इसका अधिक प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। पहले शास्त्रीय वादन-क्षेत्र में जिस प्रकार से भारतीय गज़ वाद्यों, जैसे - सारंगी,

इसराज आदि का प्रयोग होता था, वह आज उतना नहीं रहा, परन्तु व्हायोलिन का प्रयोग उन वाद्यों की तुलना में अधिक है। पं. वी. जी. जोग, परितोष शील, रॉबीन घोष, शिशिरकणा धर चौधुरी आदि प्रसिद्ध वादक कलाकारों ने बंगाल में व्हायोलिन के वादन-क्षेत्र का मार्ग प्रशस्त किया है।

(साक्षात्कार के आधार पर, दिनांक : 02-04-2003, कोलकाता)

उस्ताद मशकुर अली खाँ

बन्दिश नवाज़ उस्ताद मशकुर अली खाँ (किराना घराना) का जन्म देश के एक प्रसिद्ध संगीत परिवार में हुआ. इनके पिता पद्मश्री उस्ताद शाकुर खाँ (सारंगी नवाज़) जो बीनकार उस्ताद बन्दे अली खाँ के परिवार से सम्बन्धित हैं. संगीत की शिक्षा इन्होंने अपने पिता उस्ताद शाकुर खाँ से प्राप्त की. उस्ताद मशकुर अली खाँ आकाशवाणी के 'ए ग्रेड' कलाकार है. आकाशवाणी, दूरदर्शण के अलावा वे देश के बड़े-बड़े संगीत सम्मेलनों तथा विश्व के कई देशों में कार्यक्रम प्रस्तुत करके संगीत प्रेमी श्रोताओं का मनोरंजन किया. वह संगीत के एक योग्य शिक्षक हैं. उस्ताद मशकुर अली खाँ संगीत रिसर्च अकादमी कोलकाता तथा अमरीकन अकादमी ॲव़ इण्डियान क्लासिकल म्युजिक, न्युयार्क से सम्बद्ध है.

व्हायोलिन तथा अन्य विदेशी वाद्यों के प्रति उस्ताद मशकुर अली खाँ का दृष्टिकोण

भारत में गज़ से बजाए जानेवाले वाद्यों की परम्परा बहुत ही प्राचीन मानी जाती है। विद्वानों की मान्यता है कि गज़वाले वाद्यों का सूत्रपात सर्वप्रथम भारत में हुआ और यहीं से वह विदेशों में गया। तत्पश्चात् युरोप में विकास के चरम शिखर तक पहुँचकर युरोपीयों के माध्यम से ही भारत वापस आया। वर्तमान में हम व्हायोलिन का जो अवयव देखते हैं वह युरोपीय विद्वानों के ही वैज्ञानिक चिन्तन का नतीजा है। अतः व्हायोलिन के वर्तमान आकार को हम विदेशी ही कहेंगे। विदेशी वाद्य होते हुए भी भारतीय संगीत में इस वाद्य ने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया हुआ है। इसका मुख्य कारण यही कहा जा सकता है कि भारतीय संगीत की विशेषताओं को समाहित करने की क्षमता वाद्य में है।

हमारी वंश परम्परा में पहले बीन उसके बाद सारंगी की प्रधानता रही। हर व्यक्ति को गायन के साथ-साथ सारंगी की शिक्षा दी जाती थी। मेरे दादा उस्ताद वहीद खाँ एवं पिता उस्ताद शकुर खाँ गायन तथा सारंगी वादन में सिद्धहस्त थे। स्वतन्त्र वादन के साथ-साथ संगत वाद्य के रूप में सारंगी ही प्रमुख वाद्य थी एवं आज भी सारंगी का यह प्रयोग विद्यमान है। बंगाल प्रान्त में इसराज आदि वाद्यों का अधिक प्रचलन था। विदेशियों के आगमन से देश में सांस्कृतिक परिवर्तन तथा लोगों की रूचि में भी परिवर्तन आया। देशी वाद्यों के साथ-साथ विदेशियों के द्वारा लाए गए वाद्यों में भी लोग रूचि रखने लगे। अनेक प्रकार के विदेशी वाद्यों, जैसे - पियानो, सेलो, क्लैरोनेट, गिटार, व्हायोलिन, सैक्सॉफोन आदि का प्रयोग यहाँ आरम्भ हुआ। प्रारम्भ में इनमें पाश्चात्य वादन ही होते थे। धीरे-धीरे लोग इन वाद्यों के प्रति आकृष्ट होने लगे एवं इनमें भारतीय संगीत में उन वाद्यों का प्रयोग करने लगे। इस प्रयोग से देखा गया है कि सभी वाद्य भारतीय शास्त्रीय संगीत के लिए सही नहीं हैं, परन्तु इनमें व्हायोलिन एक ऐसा वाद्य प्रतीत हुआ जिसमें शास्त्रीय संगीत की विशेषताओं को प्रकट किया जा सकता है। अतः अभ्यास के माध्यम से लोगों ने इसे भारतीय शास्त्रीय संगीत के लिए उपयुक्त साबित कर लिया है। अन्य वाद्यों क़ा प्रयोग भी जारी रहा, परन्तु क्षेत्र केवल अलग हो गया। आज के ज़माने में संगीत के सभी क्षेत्रों में व्हायोलिन का सफल प्रयोग देखा जाता है। स्वतन्त्र वादन हो या संगत अथवा वृन्दवादन हो या सहयोगी वादन सभी क्षेत्रों में

व्हायोलिन का महत्त्व अधिक है। बंगाल में लोक-संगीत में भी व्हायोलिन का प्रयोग देखा जाता है। अन्य वाद्यों का प्रयोग सुगम-संगीत तथा फिल्म-संगीत के वृन्दवादन तक ही सीमित रह गया। पियानो जैसे वाद्य में शास्त्रीय वादन का प्रयास किया गया, परन्तु यह प्रयास अधिक सफल नहीं हुआ। पं. वी. बलसारा जैसे कलाकार ने पियानो वाद्य में भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रयोग करके इसे थोड़ा-बहुत सफलता के द्वार तक पहुँचाया।

(साक्षात्कार के आधार पर, दिनांक : 09-02-2005, कोलकाता)

श्री बाबूलाल गन्धर्व

श्री बाबूलाल गन्धर्व का जन्म 15 अप्रैल 1951 को मध्यप्रदेश के देवास में एक संगीत परिवार में हुआ. श्री बाबूलाल ने संगीत (गायन, सारंगी) की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता (जयपुर घराने के प्रसिद्ध सारंगी वादक) पण्डित काशीराम गन्धर्व से प्राप्त की. इनके पूर्व की पाँच पीढ़ियों से सारंगी वादन चल रहा है. कुशल व्हायोलिन वादक पण्डित सदाशिव गणेश रानाड़े से इन्होंने व्हायोलिन वादन की शिक्षा ली. व्हायोलिन यन्त्र के आधार पर इन्होने एक नये वाद्य 'बेला बहार' का निर्माण किया जिसमें व्हायोलिन तथा सारंगी दोनों के मधुर तत्त्वों का मिलन हुआ है. सन् 1987 में श्री बाबूलाल गन्धर्व सारंगी नवाज़ पण्डित रामनारायण के शिष्य हुए. वर्तमान में वे आकाशवाणी के 'ए ग्रेड' कलाकार हैं. श्री बाबूलाल आज फ़िल्मों, दूरदर्शन, आकाशवाणी और महफिलों में बेला बहार के सफल कार्यक्रम पेश करते हैं.

व्हायोलिन तथा अन्य विदेशी वाद्यों के प्रति
श्री बाबूलाल गन्धर्व का दृष्टिकोण

व्हायोलिन एक युरोपीय वाद्य है, परन्तु भारतीय संगीत में यह वाद्य इस प्रकार से शामिल हो चुका है कि आज हम इसे अपना ही वाद्य मानने लगे हैं। भारतीय सभी वाद्यों के साथ आज व्हायोलिन की भी गणना की जाती है। विविध प्रकार के पाश्चात्य वाद्यों में से इस वाद्य ने अपने कुछ गुण और विशेषताओं के कारण भारतीय संगीत में एक विशेष स्थान बनाने में समर्थ हुआ। प्रारम्भ में शास्त्रीय क्षेत्र में ही इसका प्रयोग शुरू हुआ होगा, परन्तु आज संगीत के सभी क्षेत्रों में इस वाद्य का पूर्ण विचरण है। विदेशी वाद्य होने के बावजूद यह वाद्य भारतीय संगीत के प्रस्तुतिकरण में पूरी तरह से क्षमता रखता है। भारत का जो खास अभिजात संगीत, जिसे हम राग-संगीत कहते हैं, यही भारतीय संगीत का असली रूप है। मीण्ड, गमक आदि विशेषताएँ जो हमारे भारतीय राग-संगीत के लिए आवश्यक है उन्हें इस वाद्य पर अच्छी तरह से प्रयोग किया जा सकता है। राग-संगीत को पूर्ण रूप से प्रकट करने की जितनी क्षमता व्हायोलिन में है इतनी अन्य विदेशी वाद्यों में नहीं। इसलिए इस वाद्य को भारतीय संगीत के लिए एक पूर्ण सक्षम वाद्य माना गया है। व्हायोलिन एक गज़ वाद्य होने के कारण गज़ संचालन के द्वारा स्वरों की लम्बाई (जिसे Sustain sound कहा जाता है), छोटा-बड़ापन तथा छोटे-बड़े सभी प्रकार के स्वर इसमें बज सकते हैं।

अन्य विदेशी वाद्यों में गिटार, जो भारतीय संगीत में काफी प्रचलित हो रहा है और कुछ अच्छे कलाकार इसमें राग-संगीत बजाते है। भारतीय वाद्य सितार और सरोद जैसे गिटार भी प्रहार वाद्य है। गिटार में मीण्ड का काम होता है, परन्तु कहीं न कहीं उसकी अपनी सीमा अवश्य हो जाती है। सितार, सरोद आदि भारतीय परम्परागत वाद्यों की तुलना में गिटार की Tonal quality अलग है लेकिन अपने तरह से बजानेवाले अच्छे कलाकार यहाँ हैं। अन्य वाद्य क्लैरोनेट के भी अच्छे कलाकार है, परन्तु जब भारतीय राग-संगीत की बात होती है तो विदेशी वाद्यों में आज सिर्फ व्हायोलिन की ही चर्चा होती है। गिटार, पियानो, क्लैरोनेट आदि वाद्यों का प्रयोग बहुत ही कम है। क्योंकि इन वाद्यों की कुछ सीमाएँ होती हैं। इनमें गमक, मीण्ड तथा श्रुति की भिन्नता दिखाना मुशकिल है अथवा नहीं दिखायी जा सकती है, जो व्हायोलिन में सम्भव है। इसलिए व्हायोलिन वाद्य ने भारतीय संगीत में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान

बनाया और काफी लोकप्रियता भी हासिल की। व्हायोलिन को जब भारतीय संगीत में अपनाया गया तो शास्त्रीय वादन के साथ सुगम-संगीत में भी धीरे-धीरे इसका उपयोग होने लगा। भारतीय वाद्य सितार, सरोद आदि को सुगम-संगीत में इतना उपयोग नहीं किया गया जितना कि व्हायोलिन को। आज-कल सितार, सरोद का भी उपयोग होता है, परन्तु शास्त्रीय वादन के अलावा सुगम या फिल्म-संगीत में व्हायोलिन का ही प्रयोग ज्यादा होता हैं।

कोई घरानेदार गायक (ख्याल गायकी के) अगर ख्याल गाता है तो यही उसकी विशेषता है। कुछ कलाकार आज-कल शास्त्रीय गायन के साथ सुगम संगीत में भी रूचि रखते है। ऐसे कलाकारों के प्रति दृष्टिकोण भी अलग हो जाता है। उसी प्रकार व्हायोलिन वादकों के प्रति भी लोगों का ऐसा दृष्टिकोण दिखाई देता है। कुछ प्रतिष्ठित व्हायोलिन वादक हैं, जो सिर्फ शास्त्रीय संगीत ही बजाते हैं। केवल कभी-कभी सर्वसाधारण के मनोरंजन के लिए उपशास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत ठुमरी, टप्पा, दादरा, धुन आदि बजाते हैं, लेकिन वह रागों के ऊपर ही निर्भर होता है।

व्हायोलिन के समान हारमोनियम भी एक विदेशी वाद्य है। कण्ठ संगीत में संगत के लिए गायक हारमोनियम को ही ज्यादा पसन्द करते हैं। साथ-संगत के लिए परम्परागत वाद्यों में सारंगी ही पहले बहुत प्रचलित थी। क्योंकि सारंगी कण्ठ-संगीत के सबसे नजदीक का वाद्य है। इसलिए गायन के साथ सारंगी की संगत एक ज़माने में बहुत होती थी। बाद में हारमोनियम तथा व्हायोलिन भी साथ-संगत के रूप में आया। एक तरह से हारमोनियम के प्रति गायकों में ज्यादा उलझन धीरे-धीरे दिखाई दि। आज-कल कोई भी कण्ठ-संगीत गानेवाले साथ-संगत के रूप में हारमोनियम को ही ज्यादा पसन्द करते हैं। इसका कारण यह है कि हारमोनियम में स्वर का भराव अन्य वाद्यों से ज्यादा मिलता है। परन्तु इसकी भी कुछ सीमा अवश्य हो जाती है। क्योंकि कुछ राग ऐसे हैं जिनके कुछ स्वर हारमोनियम में बजाना सम्भव नहीं होता, जैसे - देशी के कोमल निषाद, दरबारी के गन्धार, तोड़ी के गन्धार आदि। लेकिन गानेवाले हारमोनियम को इसलिए पसन्द करते है कि उनको हरेक स्वर भरावपूर्ण मिलते हैं, जो व्हायोलिन या सारंगी से नहीं मिलते। तथापि व्हायोलिन को भी संगत के रूप में प्रयोग किया जाता है, क्योंकि सारंगी के जैसे व्हायोलिन भी कण्ठ-संगीत के ज्यादा करीब है। यह प्रयोग दक्षिण भारत में अधिक है।

व्हायोलिन भारतीय संगीत के सभी क्षेत्रों में सफलता से प्रयोग किए जाने के कारण इसकी लोकप्रियता भारतीय संगीत में धीरे-धीरे बढ़ती गई। इसका यही प्रमाण है कि इस वाद्य के प्रति सुननेवालों का दृष्टिकोण बहुत अच्छा है। कहीं-कहीं ये भी दिखाई देता है कि व्हायोलिन में स्वरों के अलग-अलग भाव के अनुसार इसमें स्वर पैदा करने की जो क्षमता है उसे देखते हुए बहुत से लोगों को तो अन्य वाद्यों की अपेक्षा व्हायोलिन ज्यादा अच्छा लगता है। व्हायोलिन के प्रति उनका आकर्षण ज्यादा है। लोगों की पसन्द के हिसाब से यह वाद्य भी हमारे संगीत में एक रूप हो गया है। बहुत से प्रतिष्ठानों में भारतीय वाद्य के साथ व्हायोलिन भी बजाया जाता है और इसमें ज्यादा विद्यार्थी भी सीखने आते हैं। ऐसी स्थिति हमें देखने को मिलती है। इस प्रकार से व्हायोलिन सीखने का और बजाने का जो आकर्षण देखा जाता है वह बराबर बढ़ता जा रहा है। हो सकता है कि भविष्य में इस वाद्य को भी वही प्रतिष्ठा मिले जो भारतीय वाद्यों को है। आज भारतीय संगीत में व्हायोलिन का जो स्थान है वह अन्य किसी विदेशी वाद्य को नहीं।

(साक्षात्कार के आधार पर, दिनांक : 02-01-2005, मुम्बई)

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

श्री रमाकान्त सन्त

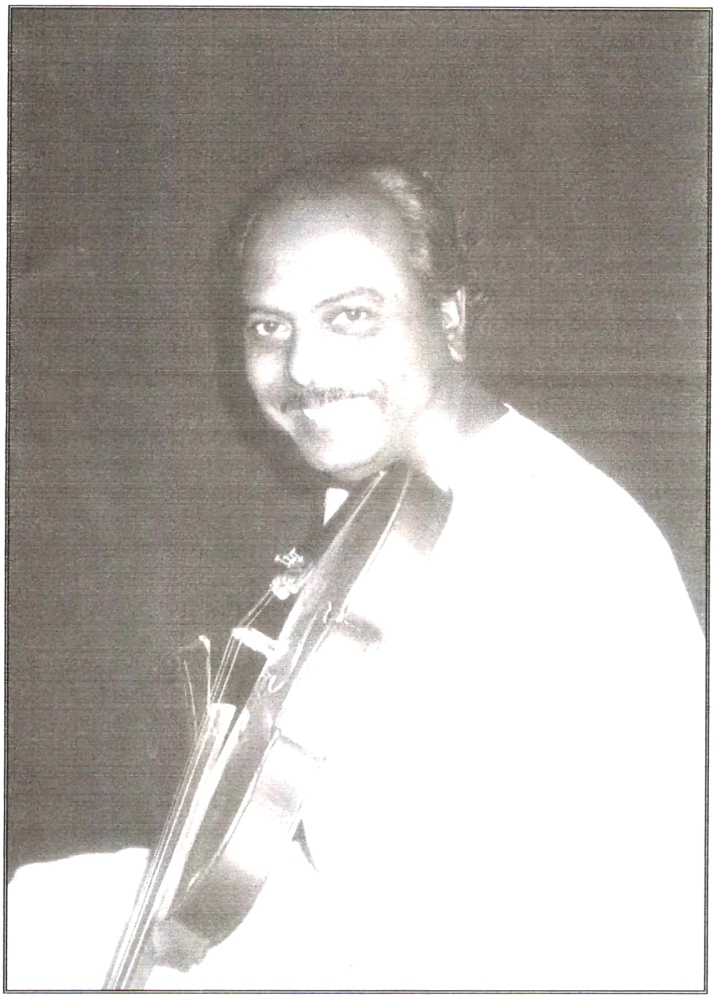

प्रसिद्ध व्हायोलिन एवं शहनाई वादक श्री रमाकान्त सन्त का जन्म सन् 1940 में एक संगीत परिवार में हुआ. संगीत की शिक्षा इन्होंने अपने पिता प्रसिद्ध व्हायोलिन एवं शहनाई वादक श्री गंगाधर सन्त से प्राप्त की जो बड़ौदा राज दरबार के म्युजिशियन थे. श्री सन्त आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के नियमित कलाकार हैं. इसके अतिरिक्त भारत के अनेक महत्त्वपूर्ण शहरों के अनेक संगीत सम्मेलनों एवं समारोह में अपना वादन प्रस्तुत किया है. भारत के बाहर अमरीका, इंग्लैण्ड, कैनडा, मध्यप्राच्य आदि देशों में भी इन्होंने कार्यक्रम प्रस्तुत करके श्रोताओं का मनोरंजन किया है. मुम्बई के सूर सिंगार संसद से सन् 1980 में श्री सन्त को 'सूर मणि' की उपाधि प्राप्त हुई. वर्तमान में वे व्हायोलिन एवं शहनाई के विभिन्न कार्यक्रमों की प्रस्तुति के साथ-साथ विद्यार्थीओं को शिक्षा देने में व्यस्त हैं.

व्हायोलिन तथा अन्य विदेशी वाद्यों के प्रति श्री रमाकान्त सन्त का दृष्टिकोण

व्हायोलिन एक पाश्चात्य वाद्य जरूर है, परन्तु इसको हिन्दुस्तानी संगीत में सफलता के साथ प्रयोग किया गया है। पाश्चात्य संगीत में व्हायोलिन वादन और हिन्दुस्तानी संगीत में व्हायोलिन वादन इन दोनों पद्धतियों में उसकी भिन्नता दिखाई देती है। पाश्चात्य पद्धति में कलाकार खड़े होकर या खुरसी पर बैठकर अपना वादन करते है, जहाँ हिन्दुस्तानी पद्धति में कलाकार ज़मीन पर बैठकर वादन करते है, क्योंकि राग-संगीत के लिए ज़मीन पर बैठकर गायन-वादन का नियम प्राचीन काल से ही प्रतिष्ठित है।

व्हायोलिन के तारों को साधारण रूप से G D A E अर्थात म़ सा प रें इन स्वरों में मिलाकर ही बजाया जाता है। किन्तु भारतीय संगीत में इसे दो प्रकार से मिलाते है, जैसे दक्षिण भारत में स़ा प़ सा प एवं उत्तर भारत में प़ सा प सां इन पद्धति में। इनमें स़ा प़ सा प पद्धति में मन्द्र-सप्तक की आलापचारी करने की सुविधा मिलती है। इसलिए उत्तर भारतीय संगीत में भी कभी-कभी इस पद्धति से व्हायोलिन को मिलाकर बजाया जाता है। स़ा प़ सा प पद्धति में मन्द्र-सप्तक के षड़ज से लेकर अति तार-सप्तक के षड़ज तक स्वर मिलता है, परन्तु प़ सा प सां पद्धति में मन्द्र-सप्तक के पंचम तक ही स्वर मिलता है। उत्तर भारतीय संगीत में कुछ राग ऐसे होते हैं जिनमें मन्द्र-सप्तक का आलापचारी ज्यादा करना पड़ता है, किन्तु प़ सा प सां पद्धति में यह सुविधा नहीं है। इसलिए उन रागों को बजाने के लिए स़ा प़ सा प पद्धति में भी हम व्हायोलिन को मिलाकर बजाते है।

वादन की सुविधा के लिए पाँच तारवाले व्हायोलिन का भी निर्माण किया गया। फलतः इसकी तारों को स़ा प़ सा प सां इस प्रकार से मिलाया गया। इससे सुविधा यह हुई कि हम कोई भी राग अच्छी तरह एवं आसानी से मन्द्र एवं तार दोनों सप्तकों में बजा सकते हैं।

व्हायोलिन एक ऐसा वाद्य है जिसमें Simple finger board है। उसमें कोई आधार नहीं है। अंगुली, अन्दाज़ और दिमाग इन तीनों का इस्तेमाल करके व्हायोलिन का वादन करना पड़ता है।

उत्तर भारतीय संगीत में जब व्हायोलिन का प्रवेश हुआ तब यह वाद्य सिर्फ फिंगरिंग से ही बजता था। फिंगरिंग और बोयिंग के द्वारा सितार, सरोद में बजनेवाले गत् तथा दिर दिर दारा आदि बोलों को बजाया जाता था। दक्षिण भारतीय संगीत में प्रारम्भ से ही व्हायोलिन को गायकी अंग में बजाया जाता है। दक्षिण के कुछ कलाकारों के द्वारा धीरे-धीरे उत्तर भारतीय संगीत में भी इस वाद्य पर गायकी अंग का वादन शुरू हुआ। उन्होंने अपने वादन में उत्तर और दक्षिण दोनों शैलियों का मिश्रण किया और कट बोयिंग में गमक की तान, जो उनकी खास विशेषता है, बजाना शुरू किया एवं लोगों को भी अच्छा लगा। इस प्रकार से उत्तर भारत में भी गायकी शैली से वादन होने लगा। लेकिन हमने अपनी विशेषता नहीं छोड़ी जो उत्तर भारतीय पद्धति की विशेषताएँ हैं। क्योंकि यह वाद्य गायकी अंग का होते हुए भी इसमें इतनी गायकी नहीं है, जितनी की सारंगी में है। सारंगी में पूरी गायकी बजती है, जहाँ व्हायोलिन में पूरी गायकी बजाना मुश्किल है। वाद्य की क्षमता के हिसाब से जितनी गायकी सारंगी से निकलती है उतनी व्हायोलिन से नहीं निकलती, क्योंकि सारंगी में अंगुलियाँ ऊपर से नीचे जाती हैं, जिससे गायकी निकालने में सुविधा होती है ओर व्हायोलिन में प्रक्रिया ठीक उल्टी है। इसमें अंगुलियाँ नीचे से ऊपर उठता है, जिससे गायकी बजाने में कुछ असुविधा हो जाती है तथा आवाज़ की मधुरता में भी दोनों एक दूसरे से अलग हो जाती हैं। इसके अलावा दोनों वाद्य में भिन्नता रखने के लिए व्हायोलिन में फिंगरिंग का इस्तेमाल करना चाहिए। क्योंकि सारंगी पूर्ण रूप से गायकी का साज़ है और इसमें गमक भी अधिक बजतीं है। व्हायोलिन में भी कट बो के साथ गमक बजाना कोई बुरी बात नहीं है। परन्तु उत्तर भारतीय संगीत में स्वर ज्यादा मीण्ड युक्त होते हैं।

एक बात जरूरी है कि रागों को वाद्य के हिसाब से बजाना चाहिए। सभी राग सभी वाद्यों में बजाये जा सकते हैं, परन्तु कुछ रागों को यदि वाद्य के हिसाब से बजाया जाए तो उससे वातावरण अच्छा तैयार हो पाता है और सुननेवालों को भी ज्यादा आनन्द प्राप्त होता है। जैसे किरवामी राग व्हायोलिन में उतना अच्छा नहीं लगता जितना कि सितार में लगता है। व्हायोलिन में विशेष कुछ रागों को चयन करके बजाना चाहिए। सम्पूर्ण जाति के एवं शुद्ध स्वरों के राग इसमें बजाने में सुविधा ज्यादा रहती है। रागों में यमन, बिहाग, केदार, बिलावल, शुद्ध कल्याण एवं खमाज, काफी, पिलू, पहाड़ी आदि का वादन अच्छी तरह से किया जा सकता है। दरबारी, अड़ाना आदि रागों को पाँच तारवाले व्हायोलिन में बजाना

अच्छा लगता है। क्योंकि उसमें उन रागों की गम्भीरता बराबर बनी रहती है। मेरे विचार से व्हायोलिन वादको को इस विषय में ध्यान रखना जरूरी है कि कौन-कौन से राग बजाना चाहिए।

व्हायोलिन के अलावा और भी विदेशी वाद्य यहाँ है, जैसे - पियानो, गिटार, क्लैरोनेट आदि। उन वाद्यों में पाश्चात्य संगीत का वादन ही अच्छा लगता है। हमारें यहाँ कुछ लोग शास्त्रीय वादन भी करते है, परन्तु उनमें स्वरों की गूंज (continuity of tone) नहीं रहती। राग जरूर बजेगा, किन्तु भारतीय राग-संगीत की विशेषताओं को प्रकट करने में बाकी पाश्चात्य वाद्य असमर्थ हैं तथा उनमें राग-संगीत का वादन उतना कर्णप्रिय भी नहीं लगता है।

भारत में प्रयोग होनेवाले सभी विदेशी वाद्यों में व्हायोलिन ही राग-संगीत वादन के लिए सबसे उपयोगी साबित हुआ। क्योंकि इसमें राग-संगीत की सभी विशेषताओं को बजाना सम्भव है। यह एक पाश्चात्य वाद्य है, इसलिए लोगों के मन में भी ऐसा विचार आ जाता है। नहीं तो आज भारतीय संगीत के साथ इस वाद्य का जो सम्बन्ध स्थापित हो गया इससे हम कभी-कभी भूल जाते हैं कि व्हायोलिन एक विदेशी वाद्य है।

(साक्षात्कार के आधार पर, दिनांक : 01-07-2008, बड़ौदा)

श्री गौरीशंकर बैनर्जी

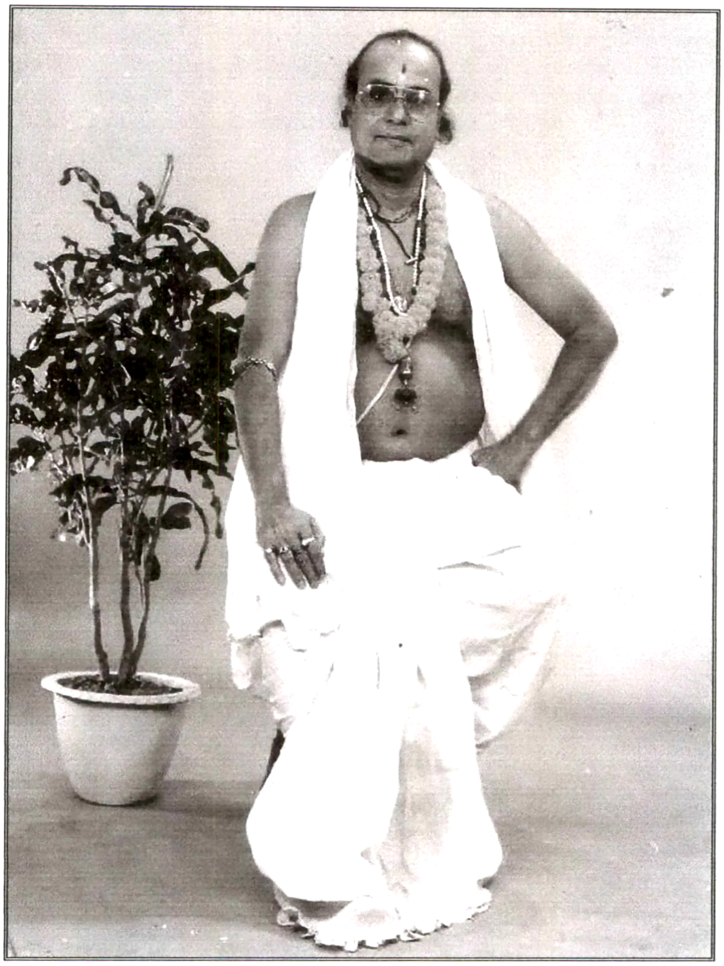

कीर्त्तन सम्राट श्री गौरीशंकर बैनर्जी का जन्म सन् 1943 में पश्चिम बंगाल के नवद्धीप जिले के एक सुसंस्कृत ब्राह्मण परिवार में हुआ. श्री बैनर्जी ने कीर्त्तन संगीत का प्रारम्भिक ज्ञान श्री राधाचरण दास बाबाजी से प्राप्त किया. तत्पश्चात् विख्यात कीर्त्तनकार ब्रजेन्द्र पाठक एवं सुप्रसिद्ध संगीत निर्देशक अनिल बागची का मार्गदर्शन प्राप्त किया. श्री गौरीशंकर बैनर्जी एक उच्चकोटि के कीर्त्तनकार हैं. इन्होंने ही कोलकाता में गौरलीला कीर्त्तन का सर्वप्रथम प्रचार किया. प्रसिद्ध कीर्त्तनकार के रुप में वे पश्चिम बंगाल तथा सम्पूर्ण भारत के कीर्त्तन प्रेमियों में परिचित हैं. कीर्त्तन संगीत के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए उन्हें सन् 2001 में पश्चिम बंग राज्य संगीत अकादमी द्धारा 'कीर्त्तन रसमय' एवं सन् 1973 में राधा दामोदर मन्दिर (वृन्दावन) द्धारा 'कीर्त्तन नित्यकलानिधि' की उपाधि प्रदान की गई.

व्हायोलिन तथा अन्य विदेशी वाद्यों के प्रति
श्री गौरीशंकर बैनर्जी का दृष्टिकोण

हम जानते है कि व्हायोलिन एक विदेशी वाद्य है। ब्रिटिश काल में अंग्रेज़ो के साथ अनेक वाद्यों का आगमन हुआ। इनमें व्हायोलिन ही अपने सार्विक गुणों के कारण भारतीय संगीत में अपनी एक विशिष्ट स्थान बनाने में समर्थ हुई एवं समयान्तर में अधिक लोकप्रियता के स्तर तक पहुँच गई। वर्तमान में संगीत के सभी क्षेत्रों में व्हायोलिन का जितना प्रयोग हम देखते हैं उतना अन्य विदेशी वाद्य का नहीं। शास्त्रीय संगीत से लेकर सुगम-संगीत, लोक-संगीत, कीर्त्तन, बाउल तथा अन्य सभी क्षेत्रों में व्हायोलिन का मुक्त प्रवेश है। यह तो वाद्य की अपनी गुण तथा लोकप्रियता के कारण ही सम्भव हुआ। अंग्रेज़ों के द्वारा जब बंगाल में विभिन्न पाश्चात्य वाद्यों का प्रयोग आरम्भ हुआ तब स्वाभाविक रूप से ही बंगाल के संगीत प्रेमियों ने उनके वाद्य का वादन पाश्चात्य संगीत के माध्यम से ही आरम्भ किया होगा। परवर्ती में कई प्रकार के वाद्यों में से एकमात्र व्हायोलिन को ही लोगों ने भारतीय संगीत के लिए उपयोगी समझकर इसका प्रयोग आरम्भ किया।

इतिहास के पन्ने से जानकारी मिलती है कि शास्त्रीय वादन द्वारा ही व्हायोलिन का सर्वप्रथम प्रयोग भारतीय संगीत में आरम्भ हुआ था। कहा जाता है कि शास्त्रीय प्रयोग के पहले भी भारतीय संगीत के अन्य क्षेत्रों में व्हायोलिन का प्रयोग आरम्भ हुआ होगा, परन्तु इस प्रयोग का क्षेत्र मिलना कठिन है। बुजुर्गों का कहना है कि जिस प्रकार से शास्त्रीय कलाकारों ने व्हायोलिन को अपनाया था, उसी प्रकार बंगाल के कीर्त्तन संगीत के सहयोगी वादक कलाकारों ने भी इस वाद्य को अपनाकर कीर्त्तन के वाद्यवृन्द में शामिल क़र लिया। कीर्त्तन को बंगाल का प्राचीन शास्त्रीय गीत कहा जाता है क्योंकि प्राचीन काल से ही कीर्त्तन राग-रागिनियों पर आधारित है। कीर्त्तन में प्रयुक्त राग-रागिनियों के लिए व्हायोलिन वाद्य को अधिक उपयुक्त समझा गया।

अत: एक पर्दाविहीन वाद्य तथा सहज वादन विधि होने के कारण गायन की संगति के लिए जिस प्रकार से कीर्त्तन गायकों ने वाद्य को पसन्द किया, उसी प्रकार से सहयोगी वादक कलाकारों ने भी इसे अपनाकर कीर्त्तन के भावरस को अधिक प्रकट करने में सहायता की। कीर्त्तन संगीत के प्रकारों में 'लीलाकीर्त्तन' जिसमें गायन, अभिनय तथा नृत्य के माध्यम से

भगवान श्रीकृष्ण की बाल्यलीला, रूप वर्णन, राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला आदि तथा गुणों का वर्णन किया जाता है, उसमें व्हायोलिन का प्रयोग एक अलग सौन्दर्यपूर्ण वातावरण तैयार करने में सहायक होता है। लीलाकीर्त्तन को पदावली कीर्त्तन भी कहा जाता है। क्योंकि उसमें विभिन्न प्रकार के पदों के माध्यम से लीला तथा गुण का वर्णन किया जाता है। इसमें कीर्त्तनकार अपनी स्वयं की प्रतिभा के द्वारा विभिन्न प्रकार के रसों की सहायता से भगवान के गुण और लीला का वर्णन करता है। इसमें व्हायोलिन की संगत कीर्त्तनकार को अधिक सहायता प्रदान करती है, जिससे श्रोता भी अधिक आनन्द प्राप्त करता है। व्हायोलिन में वह सभी गुण विद्यमान है, जो लीलाकीर्त्तन के लिए आवश्यक है। कीर्त्तन के अन्य प्रकार है 'नामकीर्त्तन' उसमें भी व्हायोलिन का प्रयोग होता है, परन्तु उसमें भगवान श्रीकृष्ण तथा राम-नाम के साथ गायक एवं वादकों को अविराम नृत्य करना आवश्यक होने के कारण व्हायोलिन वादकों को अत्यधिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है, परन्तु कीर्त्तन के भाव को प्रकट करने के लिए व्हायोलिन वादक अपने प्रयास में कोई कमी नहीं छोड़ता। अतः हम देखते है कि पाश्चात्य वाद्यों में व्हायोलिन ही एकमात्र वाद्य हुआ, जिसे संगीत के अन्य क्षेत्रों के समान कीर्त्तन संगीत में भी सफलता के साथ प्रयोग करना सम्भव है।

(साक्षात्कार के आधार पर, दिनांक : 12-01-2005, कोलकाता)